Thermolumiunescence

उष्मादीप्ति

Dr. Manoj Kumar
Assistant Professor (Guest)
Dept. of A.I.H. & Archaeology,
Patna University, Patna-800005

P.G. / M.A. IInd Semester,

Dept. of A.I.H. & Archaeology. Patna University

Paper- C.C.8, Concept and Technique of Archaeology, Pre and Proto History of Africa & Excavated Archaeology Sites

मृदभाण्डों एवं मृदभाण्ड सदृश जिन अन्य पूरावशेषों को अतीत में पकाया गया था, उनके कालानुक्रम निर्धारण की उष्मा -दीप्ति एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पद्धति है। नवपाषाणिक काल से सम्बन्धित पुरास्थलों से प्रायः मृदूभाण्डों का न्यूनाधिक मात्रा में मिलना प्रारम्भ हो जाता है और परवर्ती सांस्कृतिक कालों में इनकी संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है। बीसवीं शताब्दी के साठवें दशक तक मिट्टी के बर्तनों के टुकड़ों की निर्माण- विधि, वनावट तथा अलंकरण-अभिप्रायों आदि के अध्ययन के आधार पर पुरातत्त्ववेत्ता सापेक्ष कालानुक्रम का निर्धारण किया करते थे।

सोलहवीं शताब्दी में रॉबर्ट बॉयल का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट हुआ था कि यदि हीरे को उच्च तापक्रम में तपाया जाए तो उससे प्रकाश की किरणे निकलती हैं, जिन्हें अँधेरे में देखा जा सकता है। भौतिक विज्ञान में इस तथ्य का उपयोग सर्वप्रथम फेरिग्टॅन डेनियल (Farington Daniel) ने सन् 1953 में किया थी। सन् 1960 में जी.सी. केनेडी (G.C. Kennedy) और एल. नॉफ (L. Knopff) नाम के बैज्ञानिकों ने मृद्भाण्डों के कालानुक्रम से सम्बन्धित उष्मादीप्ति की

इस नवीन विधि की सम्भावनाओं की ओर पुराविदों का ध्यान आकर्षित किया।

उष्मा-दीप्ति का सिद्धान्त इस तथ्य पर आधारित है कि मृदभाण्ड एवं एतद्-सदृश अन्य वस्तुएँ, जैसे अलाव या चूल्हे (Hearth) की मिट्टी, ईंटें, कॉच (Glass) तथा काचित वस्तुएँ (Glazes) जिन्हें लगभग 400-500 सेन्टीग्रेड से 1200 सेन्टीग्रेड के उच्च तापमान मे अतीत में पकाया गया था, इनकी उष्मा दीप्ति की मात्रा को माप कर कालानुक्रम निर्धारित किया जा सकता है। किसी पदार्थ को तपाने पर ताप के रूप में जो उर्जा निकलती है, उसे उष्मा-दीप्ति कहा जाता है उच्च तापक्रम (500^0 से 1200^0 सेन्टीग्रेड) में पकाये जाने के फलस्वरूप निर्माण के समय मृत्पात्रादि में उष्मा दीप्ति की मात्रा शून्य होती है। मृदभाण्ड के किसी टुकड़े में उष्मा-दीप्ति की मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि उक्त टुकड़े को आँवा में पकाये जाने से लेकर अब तक में कितना समय व्यतीत हुआ है। मिट्टी के बर्तन बनाने के लिए प्रयुक्त मिट्टी अधिकांशतः काफी पुरानी होती है और इनमें विद्यमान खनिजों आदि में उष्मा-दीप्ति पुंजीभूत रूप में विद्यमान रहती है। मृदुभाण्डों के निर्माण में प्रयुक्त मिट्टी में विद्यमान खनिजों के प्राकृतिक कणों में अनेक प्रकार की अशुद्धियाँ (Impurities) में पायी जाती है। इनके अतिरित अत्यल्प संख्या में पोटैशियम-40 (K-40), थोरियम तथा यूरेनियम के प्राकृतिक रूप में रेडियो एक्टिव तत्त्व भी मिट्टी में विद्यमान रहते हैं जिसके परिणामस्वरूप अल्फा (Alpha) और बीटा (Beta) कण (Particles) मृदभाण्ड के पात्र खण्ड से निरन्तर निकलते रहते हैं। इनके अतिरिक्त यदि वह वस्तु जमीन में दरबी हुई हो, तो आस-पास के परिवेश से बीटा तथा गॉमा (Gamma) कण्णो का विकिरण उक्त वस्तु पर होता रहता है। इनके अलावा अंतरिक्ष किरणों द्वारा भी उस वस्तु पर विकिरण होता है। मिट्टी में प्राकृतिक रूप में मिले हुए खनिजों मे विद्यमान रेडियो एक्टिव तत्त्व आयनीकृत विकिरण के सतत श्रोत हैं । जब रेडियो

सक्रियता से आवेशित अल्फा, गांमा और बीटा के परमाणु किसी वस्तु का भेदन करते हैं, तब आयनीकरण होता है।

विद्युत आवेशित ये कण पर्याप्त शक्तिशाली होते हैं। इनके विकिरण से मृत्पात्रों में विद्यमान अणुओं में कुछ स्वतन्त्र इलैक्ट्रॉन उत्पन्न होते हैं। विद्युत आवेशित ये कण अपनी ऊर्जा के कुछ अंश के आधार पर इलैक्ट्रॉनों को परस्पर संघटित होने की क्षमता प्रदान करते हैं और अणुओं से अलग होकर क्रिस्टलों (Crystals) के अन्दर घुस कर निकलने की क्षमता प्रदान करते हैं। मृदभाण्ड के टुकड़ों के जिस स्थान से इलैक्ट्रॉन निकल जाते हैं उसे छिद्र या रन्ध्र (Hole) कहा जाता है। मिट्टी में मिले खनिज कणों की अशुद्धियों से निर्मित रन्ध्रों को 'ट्रैप' (Trap) या वारक कहा जाता है क्योंकि कतिपय गतिशील इलैक्ट्रॉनों को छोड़कर शेष सभी इलैक्ट्रॉन इन रन्ध्रों में आबद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार जैसे-जैसे समय व्यतीत होता है, उक्त वस्तु में विकिरण की मात्रा बढ़ने लगती है। कोई मृदभाण्ड जितना ही पुराना होता है, उसमें आयनीकरण के फलस्वरूप उतनी ही अधिक संख्या में इलैक्ट्रॉनों के आवद्ध मृदभाण्ड-खण्ड को लगभग 500^0 से 1200^0 सेन्टीग्रेड के बीच में तपाया जाता है. तब उसमें फँसे हुए इलैक्ट्रॉन उन्मुक्त होकर अपनी प्रारम्भिक अवस्था में लौट आते हैं, जिसके परिणामस्वरूप ऊर्जा का निष्क्रमण 'स्फुरण' (Glow) के रूप में होता है । इसी क्रिया को उष्मा-दीप्ति की संज्ञा दी जाती है। मृदभाण्ड के निर्माण के दौरान जब कुम्हार पात्रों को आवाँ में उच्च तापक्रम में पकाता है, तब मिट्टी के रन्ध्रों में अनन्त काल से जमा हुए सभी इलैक्ट्रॉन निकल जाते हैं। उस समय मृदभाण्ड में कोई इलैक्ट्रॉन नहीं रहते हैं। इस प्रकार मृद्भाण्डों में जमा हुए इलैक्ट्रॉनों की संख्या या दूसरे शब्दों में थर्मोल्यूमिनिसेन्स की कुल मात्रा बर्तन के पकने के बाद व्यतीत हुए समय की समानुपाती होती है। प्राचीन मृदभाण्ड के निर्माण में व्यतीत हुए समय को ज्ञात करने के लिए उसे पुनः उच्च तापक्रम (500^0 से 1200^0 सेन्टीग्रेड) में तपाया जाता है। उष्मा के रूप में निकलने वाले प्रकाश की मात्रा को मापा जाता है। इसे समतुल्य रेडियो

विकिरण की मात्रा (Equivalent Radiation Dose) कहा जाता है। इसी प्रकार उस बर्तन में प्रतिवर्ष पड़ने वाली विकिरण की मात्रा (Dose per year) भी ज्ञात कर ली जाती है।

कालानुक्रम निर्धारण के अतिरिक्त असली (Real) एवं नकली (Fake) मृद्भाण्डों की पहिचान के लिए भी यह विधि उपयोगी है। नगर किसी मृदभाण्ड में उष्मा-दीप्ति की मात्रा का अभाव मिलता है तो उसे बनावट एवं आकार-प्रकार की दृष्टि से प्राचीन प्रतीत होते हुए भी, हाल ही में निर्मित स्वीकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं रहता है।

इस विधि से ज्ञात तिथियों में लगभग 10% त्रुटि की सम्भावना रहती है। उष्मा-दीप्ति विधि में अनेक त्रटियों की सम्भावनाएँ हैं। इस विधि के द्वारा प्रामाणिक तिथियों के प्राप्त होने की तभी सम्भावना है, जबकि पकाने के पश्चात् मृदभाण्ड में किसी प्रकार का विदूषण न हआ हो। मिट्टी में दबे रहने के कारण बर्तन के टुकड़ों में रेडियो एक्टिव कणों की संख्या में वद्धि एवं अंतरिक्ष किरणों के विकिरण के परिणामस्वरूप उत्पन्न रायानिक अशक्धियों के कारण तिथि निर्धारण में कठिनाइयाँ आती हैं। इलैक्ट्रॉनों के प्रकार तथा संख्या आदि का भी कालानुक्रम पर प्रभाव पड़ता है। इस विधि से ज्ञात तिथियों को धन-ऋण (+) के चिह्नों से मानक विचलन की त्रुटि का परिहार करने के लिए प्रदर्शित किया जाता है।